International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 186-187

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 186-187
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-03-2017
Accepted: 17-04-2017

नवीन
(शोधछात्रा), कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र गांव खानपुरा कलां, जिला झज्जर, भारत.

Correspondence
नवीन
(शोधछात्रा)ए कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र गांव खानपुरा कलां, जिला झज्जर, भारत.

नैषधीयचरित के सर्ग 16–18 कृदन्त पदों का विवेचन

नवीन

प्रस्तावना

बृहत्त्रीय में स्थान लेने वाला श्री हर्ष द्वारा विरचित 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य 22 सर्गो का विशालकाय काव्य है। जिसमें कुल 2830 श्लोक है। महाभारत में वर्णित नलोपाख्यान को आधार बनाकर श्री हर्ष ने उस पूरी कथा को इस महाकाव्य में चित्रित नही किया अपितु निषध देश के राजा नल व विदर्भ देश की राजकुमारी दमयन्ती की प्रेम कथा को वर्णित किया है। नल को दमयन्ती की प्राप्ति काव्य का फल है। श्री हर्ष की रचनाओं के नाम 1. स्थैर्य विचार प्रकरण 2. विजय प्रशस्ति 3. खण्डनखण्डखाद्य, 4. गोडीर्वशीय प्रशस्ति 5. अर्णववर्णन 6, छिन्द प्रशस्ति, 7. शिव शक्ति 8. नवसाहसाङ्क चरित किन्तु श्री हर्ष का कीर्ति स्तम्भ नैषधीय चरित या नैषध नामक महाकाव्य है। कृदन्त पदः सामान्य परिचय, कृत् प्रत्ययः– धातु में जिस प्रत्यय को लगा देने से संज्ञा, विशेषण और अव्यय आदि पद बनते है उसे 'कृत' प्रत्यय कहते हैं। कृत् प्रत्ययों के योग से जो शब्द सिद्ध होते हैं उन्हें 'कृदन्त पद' कहते हैं।

कृदन्त पदों के रूप संज्ञा अथवा विशेषण होने के कारण सभी लिङ्गो एवं विभक्तियों में प्रयुक्त होते हैं कृत प्रत्ययों के भेदः

कृत प्रत्ययों के मुख्यतः तीन भेद है– 1. कृत्य, 2. कृत् 3. उणादि।

1. कृत्य प्रत्ययः – 'कृत्य' संज्ञक प्रत्यय सात हैं– 1. तव्यत्, 2. तव्य, 3. अनीयर, 4. केलिमर् 5. यत् 6. क्यप् 7. व्यत्

2. कृत् प्रत्यय – कृत् प्रत्यय दो भागों में विभक्त है– 1. पूर्व कृदन्त, 2. उत्तर कृदन्त। पूर्व कृदन्त के प्रत्यय प्रायः 'कारक' अर्थो में होते हैं और उत्तर कृदन्त के प्रत्यय प्रायः 'भाव' अर्थ में होतें है।

3. उणादि प्रत्ययः पाणिनी ने 'उणादयो बहुलम्'[1] सूत्र के द्वारा धातु से बहुल करके 'उण्' आदि प्रत्ययों का विधान किया है। ये 'उण्' आदि प्रत्यय अष्टाध्यायी में पठित नही है। इन प्रत्ययों का पाठ अथवा विधान 'उणादिसूत्रपाठ' नामक ग्रन्थ में किया गया है। 'उण्' आदि प्रत्ययों का योग भी कृत् प्रत्ययों के समान, धातुओं से ही होता है यथा कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध्, अश् इन धातुओं से परे 'उण्' (उ) प्रत्यय होता है तथा कारुः, वायुः आदि पद निष्पन्न होते है।

तद्धितान्त पद सामान्य परिचय एवं अर्थः

'तेभ्यः हिताः त्र तद्धिता इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिन प्रत्ययों का योग संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण शब्दों के साथ होता है। उनको तद्धित प्रत्यय कहते है।

पुरस्कृत्य[2]

'पुरूस्' अव्ययपूर्वक 'कृ'[3] धातु से विहित 'क्त्वा'[4] प्रत्यय को 'ल्यप्'[5] (य) आदेश तथा 'तुक्'[6] आगमन होकर 'पुरस्कृत्य' पद की निष्पत्ति होती है। 'तुक्' (त) आगम के कित् होने से 'कृ' धातु के ऋकार को प्राप्त होने वाले गुण[7] का निषेध[8] हो जाता है। 'क्त्वा' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होने वाले शब्द की 'अव्यय[9]' संज्ञा होती है, अतः उससे जुड़ने वाले 'सुप्' (सु–औ–जस् आदि) का लुक् हो जता है।

समागम[11] : 'सम्' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्[12]' धातु से विहित 'खच्[13]' प्रत्यय होकर 'समागम' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'खच्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न 'समागम' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होकर उससे जुड़ने वाले प्रथमा, एकवचन से 'सु' प्रत्यय का अनुबन्ध–लोप[14] करने के पश्चात् 'स' को 'रू[15]' (र्) और 'र्' को विसर्ग होकर 'समागमः' पद सिद्ध होता है।

करः[16] 'कृ' धातु से 'भाव' अथवा कर्तृभिन्न 'कर्म' आदि कारक अर्थ में 'अप्[17]'(अ) प्रत्यय होकर धातु के ऋकार को गुण[18] और रपरत्व होने पर 'कर' शब्द निष्पन्न होता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्तिकार्य करने पर 'करः' पद निष्पन्न होता है।

अवग्रह[19] : पाणिनी ने 'ग्रह[20]' धातु से विकल्प से 'ण[21]' (अ) प्रत्यय का विधान दिया है। इस प्रत्यय के णित् होने से धातु में उपधावृद्धि[21] होकर 'ग्राह' शब्द निष्पन्न होता है। जब उपधावृद्धि न हो तो 'अच्[22]'(अ) प्रत्यय होता है। प्रकृत 'अवग्रहः' पद में उपधावृद्धि नहीं हुई है। अतः 'अव' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह्' धातु से 'अच्' (अ) प्रत्यय होकर 'अवग्रह' शब्द की निष्पत्ति होती है। उसकी 'प्रातिपदिक' संज्ञा तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अवग्रहः' पद सिद्ध होता है।

निर्वाण[23] : 'निर' पूर्वक 'वा[24]' धातु से 'क्त[25]'(त) प्रत्यय, तकार को नकार[26] आदेश एवं नकार को णत्व[27] होकर 'निर्वाण' शब्द निष्पन्न होता है। इस शब्द की 'प्रातिपदिक' संज्ञा तथा विभक्तिकार्य करने पर 'निर्वाणः' पद निष्पन्न हुआ है।

ऊचिवान्[28] 'वच्[29]' धातु से 'लिट्[30]' लकार तथा 'लिट्' को 'क्वसु[31]' (वस) आदेश होने पर धातु को सम्प्रसारण[32] एवं पूर्वरूप[33] होकर ऊच्वस्– यह स्थिति होती है। धातु को द्वित्व[34], पूर्व की 'अभ्यास[34]' संज्ञा तथा अभ्यास के चकार का लोप[36] करने पर उ़उच् में सवर्णदीर्घ[37] एकादेश होकर 'ऊच्' हुआ। ऊच्+वस्– इस स्थिति में 'वस्' को 'इट्' (इ) आगम करने पर 'ऊचिवस्' शब्द बना। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा तथा प्रथमा, एकवचन में विभक्तिकार्य करने पर 'ऊचिवान्' पद निष्पन्न होता है।

शयालु[39] : 'शीङ्[40]' धातु से 'आलुच्[41]' (आलु) प्रत्यय, धातु के 'ई' को गुण[42] (ए) और 'ए' को 'अय्[43]' आदेश होने पर शयालु शब्द निष्पन्न होता है। उसकी प्रातिपादिक संज्ञा तथा विभक्तिकार्य करने पर 'शयालुः' पर निष्पन्न होता है।

पातुक[44]: 'पत्[45]' धातु से 'उकम्[46]' (उक) प्रत्यय तथा धातु में उपधावृद्धि[47] होकर 'पातुक' शब्द निष्पन्न होता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्तिकार्य करने पर 'पातुकः' पद सिद्ध हुआ है।

निरुपधि[48] 'निर्' तथा 'उप्' उपसर्ग पूर्वक 'धा[49]' धातु से 'कि[50]' (इ) प्रत्यय तथा धातु के आकार का लुक्[51] होकर 'निरुपधि' शब्द निष्पन्न होता है। तत्पश्चात् ' प्रातिपदिक' संज्ञा तथा विभक्तिकार्य होने पर 'निरुपधि' पद निष्पन्न हुआ है।

स्पृहयालु[52]: ण्यन्त 'स्पृहि[53]' (✓स्पृह+णिच्[54]) धातु से 'आलुच[55]' (आलु) प्रत्यय 'णि' (इ) को अय[56] आदेश होने पर 'स्पृह्यालु' शब्द निष्पन्न होता है। तत्पश्चात् 'प्रातिपदिक' संज्ञा तथा प्रथमा, एकवचन में विभक्तिकार्य करने पर 'स्पृह्यालुः' पद सिद्ध हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. अष्टाध्यायी, 3.3.1।
2. नैषधीयचरित, 16.1।
3. धातुपाठा, पृ० 43 : डुकृञ् करणे।
4. अष्टाध्यायी, 3.4.21 : समानकर्तृकयोः पूर्वकाले।
5. तदेव, 7.1.37 : समासेऽनञ्पूर्वे क्यप्
6. तदेव, 6.1.71 : ह्स्वस्य पिति कृति तुक्।
7. तदेव, 7.3.84 : सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।
8. तदेव, 1.1.5 : क्ङिति च।
9. तदेव, 1.1.40 : क्त्वातोस०कसुनः।
10. तदेव, 2.4.82 : अव्ययादापसुपः।
11. नै०च०, 16.9
12. धा०पा०, पृ० 121 : गम्लृ गतौ।
13. अष्टा०, 3.2.47 : गमश्च
14. तदेव, (क) 1.3.2 : उपदेशेऽजनुनासिक इत्
    (ख) 1.3.9 : तस्य लोपः
15. तदेव, 8.2.66 : स सजुषो रुः।
16. नै० च०, 17. 11
17. अष्टा०, 3.3.57 : ऋदोरप्
18. अष्टा०, 7.3.84 : सार्वधातुकार्धधातुकयोः।
19. नै०च०, 17.26
20. धा०पा०, पृ० 46 : ग्रह उपादाने।
21. अष्टा०, 3.1.143 : विभाषा ग्रह।
22. तदेव, 7.2.116 : अत उपधायाः।
23. (क) तदेव, 3.1.134 : नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्यूणिन्यचः।
    (ख) नै०च०, 17.31
24. धा०पा०, पृ० 26 : वा गतिबन्धनयोः
25. अष्टा०, 3.2.102 : निष्ठा।
26. तदेव, 8.2.50 : निर्वाणोऽवाते।
27. तदेव, 8.4.2 : अट्कुप्वाङ्नुमव्यवायेऽपि।
28. नै०च० 17.106
29. धा०पा०, पृ० 26 : वच परिभाषणे।
30. अष्टा०, 3.2.115 : परोक्षे लिट्।
31. तदेव, 3.2.107 : क्वसुश्च।
32. तदेव, 6.2.15 : वचिस्वपियजादीनां किति।
33. तदेव, 6.1.108 : सम्प्रसारणाच्च।
34. तदेव, 6.1.8 : लिटि धातोरनभ्यासस्य।
35. तदेव, 6.1.4 : पूर्वोभ्यासः।
36. तदेव, 7.4.60 : हलादिः शेषः।
37. तदेव, 6.1.101 : अकः सवर्णे दीर्घः।
38. तदेव, 7.2.67 : वरूवेकाजाद्धसाम्।
39. नै० चा०, 18.115
40. धा० पा०, पृ० 25 : शीङ् स्वप्ने।
41. अष्टा०, 3.2.158 : स्पृहि–गृहि–पति–दयि–तन्द्रा–श्रद्धाभ्यः आलुच्।
42. तदेव, 7.3.84 : सार्वधातुकार्धधातुकयोः
43. तदेव, 6.1.78 : एचोऽयवायावः।
44. नै०च०, 18.131
45. धा० पा०, पृ० 81 : गम्लृ गतौ।
46. अष्टा०, 3.2.258 : लष–पत–पद–स्था–भू–वृषा–हन–कम–गमशृभ्य उकञ्।
47. तदेव, 7.2.116 : अत उपधायाः।
48. नै०च०, 19.13
49. धा०पा०, पृ० 28 : डुधाञ् धारणपोषणयोः।
50. अष्टा०, 3.3.92 : उपसर्गे धोः किः।
51. तदेव, 6.4.64 : आतो लोप इति च।
52. नै० च०, 20.53
53. धा० पा०, पृ० 53 : स्पृह् ईप्सायाम्।
54. अष्टा०, 3.1.25 : सत्याप्– पाश– रूप– वीणा–तूल–श्लोक–सेना–लोम–त्वच–वर्म–वर्ण–चूर्ण– चुराभ्यो षिच्।
55. तदेव, 3.2.158 : आलुच्।
56. तदेव, 6.4.55 : अयामन्ताल्वरयेत्न्विष्णुषु।